ISSN No. : 2394-0344 REMARKING : VOL-1 * ISSUE-9*February-2015

वेदान्त के पोषक स्वामी विवेकानन्द का चिन्तन

पुष्पा मीना
व्याख्याता ,
संस्कृत विभाग,
गौरी देवी राज0 महिला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

वेदान्त या उत्तरमीमांसा मुख्यतः उपनिषद् के तत्वज्ञान को प्रख्यापित करता है। सत् चित् व आनन्द स्वरूप वह ब्रह्म प्रतिक्षण परिवर्तनशील जगत का आधार व यथार्थ तत्व है। स्वामी विवेकानन्द ने जीवन को जिस रूप में स्वीकार किया था उसका आधार था वेदान्तिक धर्म। उनकी इच्छा थी कि भारत के सर्वसाधारण में यदि धर्म का संचार हो जाए तो हम छोटी–छोटी समस्याओं से मुक्ति प्राप्त कर लेंगे।

मुख्य शब्द स्वामी विवेकानन्द, समाज, विश्वास, मानवतावाद, समानता

प्रस्तावना

स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव ने धर्म के आलोच्य स्वरूप की निन्दा की और वास्तविक धर्म का मर्म समस्त लोगों को बताया। उन्होंने स्वीकार किया भारत में सभी अनर्थों की जड़ हैं 'गरीबी' हमें गरीबों को विश्वास देकर उन्हें दरिद्रता के दुःखों से मुक्त करना होगा। धम को आधार पर ही उन्होंने व्यक्ति आर समाज में पवित्रता, भक्ति, विनयशीलता, सत्यता, प्रेम, निःस्वार्थ भाव से सेवा की भावना को पुर्नजीवित करने की कामना की। स्वामी जी का राष्ट्रवाद मानवता का पोषक था। प्रत्येक मनुष्य दिव्यत्व का प्रतिनिधि है, और इसलिए हर एक धर्म–शिक्षक को मनुष्य की भर्त्सना करके नहीं, बल्कि मनुष्य में अन्तर्निहित दिव्यता के जागरण के लिए सहायता करनी चाहिए।

स्वामी जी का मानना था कि जो व्यक्ति शीघ्र ही क्रोध, घृणा या किसी अन्य आवेश से अभिभूत हो जाता है, वह कोई काम नहीं कर पाता, अपने को चूर–चूर कर डालता है और कुछ भी व्यावहारिक नहीं कर पाता। केवल शान्त, क्षमाशील, स्थिरचित्त व्यक्ति ही सबसे अधिक काम कर पाता है। वेदान्त डंके की चोट पर कहता है कि यदि तुम अपने को बन्धन में समझते हो, तो बन्धन में पड़े रहोगेः यदि तुम जानते हो कि तुम मुक्त हो, तो बस मुक्त हो गये। इस प्रकार इस दर्शन का चरम लक्ष्य तथा उद्देश्य यह बोध कराना है कि हम सदैव मुक्त रहे हैं और नित्य मुक्त रहेंगे। हम न कभी परिवर्तित होते हैं, न मरते हैं और न जन्म लेते हैं। तब ये परिवर्तन क्या हैं? यह प्रकृति का विकास और ब्रह्म की अभिव्यक्ति हैं। ब्रह्म में कोई विकार नहीं होता या उसका पुनर्विकास नहीं होता।

वेदान्त सबसे पहले मनुष्य को अपने ऊपर विश्वास करने के लिए कहता है। जिस प्रकार संसार का कोई धर्म कहता है कि जो व्यक्ति अपने से बाहर सगुण ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता, वह नास्तिक है, उसी प्रकार वेदान्त भी कहता है कि जो व्यक्ति अपने आप पर विश्वास नही करता, वह नास्तिक है। अपनी आत्मा की महिमा में विश्वास न करने को ही वेदान्त में नास्तिकता कहते हैं। विवेकानन्द के अनुसार वेदान्त दृढ़ रूप से कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति इस सत्य को जीवन में प्रत्यक्ष कर सकता है। इसकी उपलब्धि में स्त्री–पुरूष, बालक–बालिका, जाति या लिंग आदि से सम्बद्ध किसी प्रकार का भेद बाधक नहीं है–क्योंकि व्यावहारिक जीवन में वेदान्त दिखा जाता है सत्य पहले से ही सिद्ध है और पहले से ही विद्यमान है। स्वामी जी यह मानते हैं कि ब्रह्माण को समूची शक्ति हमारे भीतर पहले से ही समाहित है। लेकिन हम लोग स्वयं ही अपने नेत्रों पर हाथ रखकर 'अंधकार' 'अंधकार' कहकर चीत्कार करते हैं। हमें अपने व समाज के विकास के लिए यह विश्वास करना होगा कि चारों ओर अन्धकार नहीं है। अन्धकार कभी था ही नहीं, दुर्बलता कभी नहीं थी। हम लोग मूर्खतावश ही चिल्लाते हैं, जिसे हम अब आदर्श कहते हैं वही हमारी यर्थाथ सत्ता है–वही हम लोगों का स्वरूप है। जो कुछ हम देखते है, वह सम्पूर्ण मिथ्या है। स्वामी जी के अनुसार, जब कभी कोई व्यक्ति शेगपरक दुर्बलताओं और निस्सारताओं की वकालत करे, तो उसे सावधान रहो, क्योंकि उसका अनुसरण करके समाज उन्नति नहीं कर सकता। उनका मानना था कि हमारे देश में अनेक सम्प्रदाय कुकुरमुत्तों के समान बढ़ते जा रहे हैं। प्रतिवर्ष नये–नये सम्प्रदाय जन्म लेते हैं। यह सम्प्रदाय भीमाकांक्षी मानव की सत्याकांक्षी मानव स समझौता कराने की चेष्टा नहीं करते, बल्कि स्वयं ही उन्नति करते

हैं। वे ईश्वर को मनुष्य के स्तर पर खीच लाने की मिथ्या चेष्टा करते हैं, वहीं समाज का क्षय आरम्भ हो जाता है। मनुष्य को सांसारिक दासता के स्तर पर नहीं घसीटना चाहिए, बल्कि उसे ईश्वर के स्तर तक उठाना चाहिए। (स्वामी विवेकानन्द, 1951, 10)

जो किसी कारणवश हमारे समान उन्नति नही कर पाये, उनके प्रति घृणा करने का अधिकार किसी को नहीं है। अतः व्यक्ति का दायित्व है कि किसी की निन्दा मत करो। यदि समाज में किसी की सहायता कर सकते हो तो करो, नही कर सकते हो तो हाथ पर हाथ रखकर चुपचाप बैठे रहो, उन्हें आशीर्वाद दो, अपने रास्ते जाने दो। गाली देने अथवा निन्दा करने से कोई उन्नति नहीं होती। आलोचना और निन्दा अपनी शक्ति व्यर्थ खर्च करने का उपाय मात्र है। क्योंकि अन्त में हम पाते हैं कि सभी लोग एक ही वस्तु देख रहे ह, कमोबेश उसी आदर्श की ओर पहुंच रहे हैं तथा आप और हम लोगों में जो अन्तर है वह केवल अभिव्यक्ति का है। वेदान्त कहता है कि यदि समाज व व्यक्ति में दुर्बलता है तो कोई चिन्ता नहीं, हमें तो विकास करना है। सभी लोग अपनी समस्या व रोग जानते ह– किसी दूसर को बताने की आवश्यकता नहीं होती। वेदान्त कहता है कि मनुष्य को सदैव उसकी दुर्बलता की याद कराते रहना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उसे बल प्रदान करो, और बल सदैव निर्बलता का चिन्तन करते रहने से प्राप्त नहीं होता। मनुष्य में शक्ति पहले से विद्यमान है, उसे उसकी याद दिला दो, मनुष्य को पापी न बता कर वेदान्त ठीक उसका विपरीत मार्ग ग्रहण करता है।

स्वामी जी का मानना था कि आदर्श समाज के लिए आवश्यक है कि व्यक्तियों में आत्मविश्वास हो। उनका मानना था कि जगत् में जितना दुःख और अशुभ है, उसका अधिकांश गायब हो जाता है। मानव जाति के समग्र इतिहास में सभी महान स्त्री–पुरूषों में यदि कोई महान प्रेरणा सबसे अधिक सशक्त रही है तो वह है यही आत्मविश्वास। वे इस ज्ञान के साथ पैदा हुए थे कि वे महान बनेंगे और वे महान् बने भी। मनुष्य कितनी भी अवनति की अवस्था में क्यों न पहुंच जाए, एक समय ऐसा अवश्य आता है, जब वह उससे बेहद आर्त होकर एक ऊर्ध्वगामी मोड़ लेता है और अपने में विश्वास करना सीखता है। मनुष्य–मनुष्य के बीच जो भेद है, वह केवल आत्मविश्वास की उपस्थिति तथा अभाव के कारण ही है।

धर्म सम्बन्धी विचार

स्वामी विवेकानन्द का मानना है कि वेद कहते हैं कि आत्मा ब्रह्मस्वरूप है, वह केवल पंचभूतों के बंधनों में बंध गई और उन बंधनों के टूटने पर वह अपने पूर्णत्व को प्राप्त कर जाएगी। यही स्थिति मुक्ति है, जन्म–मृत्यु से छुटकारा। स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म का मूल आधार अपरोक्षानुभूति माना। जिसमें मनुष्य की जब समस्त कुटिलता नष्ट हो जाती है तब सारे संदेह दूर हो जाते हैं, तब वह कार्य–कारण के भयानक नियम के हाथ का खिलौना नहीं रह जाता। विवेकानन्द के अनुसार यही हिन्दू धर्म का मूलभूत सिद्धांत है। भारत में विभिन्न मत–मतान्तर ईश्वरवादी, निरीश्वरवादी प्रचलित रहे हैं। मूर्ति पूजा को स्वामी विवेकानन्द ने निचली सीढ़ी माना। मूर्तिपूजा विराधियों से उनका कहना था कि–ईश्वर यदि सर्वव्यापी है तो फिर ईसाई गिरजाघर नामक एक स्वतन्त्र स्थान में उसकी आराधना के लिए क्यों जाते हैं? वे क्रास को इतना पवित्र क्यों मानते हैं? हिन्द् लोग पवित्रता, नित्यत्व, सर्वव्यापित्व आदि भावों से सम्बन्ध विभिन्न देवमूर्तियों से अवश्य जोड़ते हैं। स्वामी विवेकानन्द का कहना था कि मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार करके स्वयं ईश्वर बनना है, पर उसे तो उत्तरोत्तर उन्नति ही करनी चाहिए। वेदों में माना गया कि ब्राह्मपूजा या मूर्तिपूजा सबसे नीचे की अवस्था है, आगे बढ़ने का प्रयास करते समय मानसिक प्रार्थना साधना की दूसरी अवस्था है, और सबसे उच्च अवस्था तो वह है जिसमें ईश्वर से साक्षात्कार हो जाए।

स्वामी विवेकानन्द का मानना कि सभी धर्मों का ईश्वर एक ही है, चाहे वह धर्म हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई आदि भिन्न–भिन्न नाम वाले क्यों न हों और मूर्तियां, क्रास या चांद तो केवल आध्यात्मिक उन्नति के सहायक रूप हैं। जो इनमें से किसी की भी निन्दा करता है तो वह अपने ही ईश्वर की निन्दा करता है। स्वामी विवेकानन्द के धर्म सम्बन्धी चिन्तन में वेदांत के व्यावहारिक स्वरूप को प्रकट किया गया है। उनका मानना था 'मैं, मेरा' इन विषयों पर ध्यान न देकर यह सम्पूर्ण संसार मेरा है, यही वेदांत की व्याख्या है। दुर्बलता हटा देनी चाहिए, क्योंकि यह पाप और अशुभ कमा को जन्म देती है। अपने पर विश्वास रखो और यदि तुम्ह भौतिक ऐश्वर्य की आकांक्षा है तो इसे क्रियान्वित करने से ही धन आएगा। यदि विद्वान और बुद्धिमान होने की इच्छा है तो उसी ओर अद्वैतवाद का प्रयोग करने से लक्ष्य प्राप्त होगा। उनका कहना था कि हमें आध्यात्मिकता की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी इस भौतिक संसार में अद्वैतवाद को थोड़ा कार्य रूप में परिणत करने की। 'पहले रोटी और तब धर्म चाहिए।' गरीब बेचारे भूखों मर रहे हैं, और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं। मत–मतान्तरों से पेट नहीं भरता। (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड–5, 1989, 323)

एक सन्यासी दार्शनिक होने के नाते स्वामी विवेकानन्द का मुख्य सरोकार परम् सत्य और परम् ब्रह्म की परिभाषा 'सच्चिदानन्द'(सत्+चित्+आनन्द) के रूप में दी अर्थात् वह परम सत्य, चेतन और आनन्दमय है। परम ब्रह्म या परमात्मा की सेवा और ध्यान में ही आत्मा का परम कल्याण निहित है। संसार से विमुख होकर एकांत मन, पर्वत–शिखर या कंदराओं में समाधि लगाकर परम ब्रह्म प्राप्त करने की आध्यात्मिक साधना विधि का उन्होंने खण्डन किया और कहा कि मानव समुदाय ही ईश्वर के अस्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है, उसी के माध्यम से ईश्वर का साक्षात्कार संभव व सार्थक है। स्वामी जी का मानना है कि जब तक हम 'दरिद्र' को 'नारायण' मान कर उसकी सेवा और सहायता नहीं करेंगे तब तक हमारी आत्मा पावन नहीं होगो। क्योंकि मानवता की सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा है।

मानवतावाद

भारत में जब भी धर्म का चिन्तन किया गया मानव मात्र के लिए उपयोगी, आत्मा के मुक्त स्वभाव को जागृत करने वाले धर्म के साथ जोड़ने के लिए किया गया है। आध्यात्मिक अनुभूति के द्वारा ही धर्मनिरपेक्ष मानवता का अभ्युदय संभव हो सकता है। बुद्ध, शंकराचार्य, श्री रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द ने मतों, पंथों जातियों और राष्ट्रों के संकीर्ण दायरे म न तो कभी चिंतन ही किया न विश्वास

दी। इन्होंने मानव को मानव के रूप में देख और उसमें निहित अनन्त दिव्य सम्भावनाओं को समझा तथा उसकी क्षुद्रता व अपूर्णता के प्रति करूणा का अनुभव किया। श्री रामकृष्ण ने विवेकानन्द को मानव मात्र की सेवा में उद्यत होना ही ईश्वर को प्राप्त करना बताया। मानव सेवा ही सत्य है, हर प्रकार के धर्म का एकमात्र सार है। समस्त विवाद, मतमतान्तर इसलिए है; क्योंकि व्यक्ति अपने पूरे व्यक्तित्व में धार्मिक होने के स्थान पर बाह्मनुष्ठानों पर जोर देता है। स्वामी विवेकानन्द किसी ऐसे धर्म को स्वीकार नहीं करते जो मानवता में विश्वास नहीं करता। ईश्वर में विश्वास करने वाला कोई भी व्यक्ति मानवता के प्रति किए गए अपराधों से सहमत नहीं हो सकता।

स्वामी विवेकानन्द का सार्वभौम धर्म इस विश्वास पर आधारित है कि ईश्वर सभी जीवित प्राणियों के माध्यम से स्वयं को प्रकट करता है। इसलिए भारत के लोगों का आह्वान किया कि वे मानवता के उद्धार के लिए कार्य करें, यही सबसे बड़ा धर्म है। यह रूढ़िवादी धर्म से अलग, एक नये धर्म के रूप में प्रस्तुत किया गया। विवेकानन्द ने कहा कि, "स्वये से परे ईश्वर को खोजना असम्भव है। हमारी स्वयं की आत्मा ही हमारे बाहर मौजूद देवत्व को बनाती है। हम स्वयं ही महान है।" (कर्णसिंह, 1999, 59)

श्री रामकृष्ण की गहन आध्यात्मिकता, महान उदारता और उच्च मानवता ने आस्तिकों और नास्तिकों, जनसाधारण और बौद्धिकों, वृद्धों व युवकों आदि मानव जाति के सभी लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया। उन्होंने वैदान्तिक अनुभूति पर आधारित मानवतावाद की मृदु विश्वास देकर विवेकानन्द को सम्पूर्ण मानवता के लिए शक्ति, निर्भयता व आशा का संदेशवाहक बनाया। विवेकानन्द के व्याख्यानों का केन्द्रीय विषय था– मनुष्य–उसकी उत्पत्ति, विकास और परिपूर्णता।

स्वामी विवकानन्द प्रत्येक भारतीय को शक्तिशाली रूप में देखना चाहते थे। वे जानते थे कि शक्तिशाली व्यक्तियों का राष्ट्र ही शक्तिशाली राष्ट्र हो सकता है। परन्तु भारत शक्तिशाली कैसे बनेगा? जब समाज के बहुत बड़े भाग को अछूत मानकर उनके साथ पशुओं जैसा व्यवहार किया जाता है, तो समाज किस तरह शक्तिशाली बन सकता है। स्वामी जी मानते थे कि अस्पृश्यता या छुआछूत एक अभिशाप है, एक पाप है। यह शास्त्रों के विरूद्ध है। धर्म के विरूद्ध है। हमारे पतन का बहुत बड़ा कारण यही है।

अस्पृश्यता समाप्ति तथा दलित–उत्थान करने के लिए स्वामी जी ने दो दिशाओं में कार्य आवश्यक बताया। प्रथम, तो बार–बार साधु, संतों, सन्यासियों द्वारा छुआछूत के विरूद्ध विचार व्यक्त किए जाएं। जनता को धर्मगुरू बार–बार, उनके बीच जाकर समझाएं कि अस्पृश्यता पाप है, सनातन धर्म के विरूद्ध है। और द्वितीय, दलितों को सुशिक्षित किया जाए। उन्ह धर्मशास्त्र पढ़ाया जाए। तभी उनका आर्थिक एवं सामाजिक स्तर ऊंचा उठेगा। यदि दलित लोग विद्वान और पंडित होंगे तथा वे समाज पर अच्छे पदों पर होंगे तो वे भी ब्राह्मण हो जाएंग। समाज उनका भी आदर करेगा। ब्राह्मणत्व कर्मणा है। जन्मना नहीं। व्यक्ति कर्म ब्राह्मण और प्ज्य होता है , जन्म से नहीं। दीन–हीन लोगों को झकझोरते हुए स्वामी जी ने कहा– पढ़ो, पढ़ो। और ब्राह्मण बन जाओ। संस्कृत सीखो। ब्राह्मणों से उनका अधिकार छीन लो। तुम भी विद्वान होकर आदर का पात्र बन सकते हो। स्वामी जी जानते थे, भारत में बहुत रूढ़िवादिता ह। हमारा समाज तरह–तरह की कुप्रथाओं और कुपरम्पराओं की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। वे कहते थे इन बेड़ियों को काटना होगा। मनुष्य को ही भगवान मान कर उसकी सेवा करनी होगी।

नारी शक्ति और उसका सशक्तिकरण

स्वामी जी का विचार था कि भारत में स्त्री जाति क पैरों में पराधीनता की बेड़ी डाल दी गई थी। 'विश्व के समस्त देवी गुण और शक्तियां उस गृह, समाज और राष्ट्र में विद्यमान रहते हैं, जहां नारी की पूजा होती है।' उनका मानना था कि स्त्री को शिक्षित बनाओ। उनके लिए आश्रम बनाओ और स्वेच्छा से विवाह की स्वतन्त्रता दो। लेकिन पुर्नविवाह को अत्यधिक महत्व नहीं देना चाहिए। विवेकानन्द से प्रश्न किया गया कि 'जब कोई विधवा पुर्नविवाह कर लेती है तो उसे जाति–च्युत कर दिया जाता है, क्या यह उचित है? विवेकानन्द का उत्तर था, 'यदि लोग आपको जाति–च्युत करते हैं तो आपको भी उन्हें जाति–च्युत करके बड़ी जाति बना लेनी चाहिए।' उन्होंने कहा कि, "हम कूपमंडूक हो गये हैं। हमें समुद्र के अस्तित्व का ज्ञान होना चाहिए।" विवेकानन्द राष्ट्र के उन्नयन के लिए मातृशक्ति के प्रति सम्मान भाव का पोषण अनिवार्य मानते थे। उन्होंने कहा था कि, "इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैवाहिक बन्धन की धार्मिक पवित्रता एवं उसकी अच्छेद्यता में दृढ़ विश्वास आवश्यक है। जिन घरों में जीवन पवित्र पाया जाता है वहां स्वयं भगवती, लक्ष्मी के रूप में निवास करती है।"

शिक्षा सम्बन्धी विचार

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही विश्वास है। ज्ञान मनुष्य में स्वभाव–सिद्धि है; कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अन्दर ही है। मनुष्य जो कुछ 'सीखता' है, वह वास्तव में, 'आविष्कार करना' ही है। 'आविष्कार' का अर्थ है– मनुष्य का अपनी अनन्त ज्ञानस्वरूप आत्मा के ऊपर से आवरण हो हटा लेना। समस्त ज्ञान, चाहे वह लौकिक हो अथवा आध्यात्मिक, मनष्य के मन में है। वह प्रकाशित न होकर ढका रहता है। और जब आवरण धीरे–धीरे हटता जाता है, तो हम कहते हैं कि 'हम सीख रहे हैं' ज्यों–ज्यों इस आविष्कार की क्रिया बढ़ती जाती है, त्यों–त्यों हमारे ज्ञान की वृद्धि होती जाती है। जिस मनुष्य पर से यह आवरण उठता जा रहा है, वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक ज्ञानी है, और जिस पर यह आवरण तह–पर–तह पड़ा हुआ है, वह अज्ञानी है। जिस पर से यह आवरण पूरा हट जाता है, वह सवज्ञ, सर्वदर्शी हो जाता है। सभी ज्ञान और सभी शक्तियां भीतर हैं। हम जिन्हें शक्तियां, प्रकृति के रहस्य या बल कहते हैं, वे सब भीतर ही हैं।

शिक्षा के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द का आग्रह था कि हमारे युवक–युवतियों को ऐसी विश्वास दी जानी चाहिए, जिससे वे देश और उसकी विराट एवं विपुल सांस्कृतिक तथा दार्शनिक विरासत पर गर्व कर सकें। वे कहते थे कि अंग्रेजों ने जान बूझकर भारत के इतिहास को बहुत तोड़–मरोड़कर एवं विकृत रूप में प्रस्तुत किया है। स्वामी जी के अनुसार शिक्षक का कार्य रास्ते की सभी रूकावटें हटा देना मात्र है। सच्ची विश्वास केवल मात्र

शब्दों का रटना मात्र नहीं है। तो भी इसे मानसिक शक्तियों का विकास अथवा व्यक्तियों का ठीक तथा कुशल ढंग से इच्छा करने का प्रशिक्षण कहा जा सकता है। स्वामी जी के अनुसार, "जिस संयम के द्वारा इच्छा शक्ति का प्रवाह तथा विकासवश में लाया जाता है और फलदायी होता है, उसे विश्वास कहते हैं।"

निष्कर्ष

उपरोक्त समग्र विवेचन के आधार पर यह सिद्ध होता है कि स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीयता के अग्रदूत, भारतीय समाज व संस्कृति के कुशल शिल्पी, मानवता व वेदान्त को सम्पूर्ण व्यक्तित्व में छिपाये एक अद्‌भुद समानता पर आधारित समाज की आधारशिला के पक्षपाती के पद चिन्हों पर यदि हम अमल करें तो हमारा देश वास्तविकरूपेण विकसित व खुशहाल देश बन जायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. विवेकानन्द साहित्य, 1989, मायावती, अद्वैत आश्रम।
2. शिखा अग्रवाल, 2003, स्वामी विवेकानन्द और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, जयपुर : आविष्कार पब्लिशर्स (राज0)
3. राजेन्द्र प्रसाद गुप्त, 1997, स्वामी विवेकानन्द – व्यक्ति और विचार, नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन।